ख़ुतबाते-हरम

(काबा में की गई तक़रीरें)

मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

अनुवाद

मुहम्मद आबिद हामिदी

नज़रसानी

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान, बड़ा रहमवाला है।"

पहला ख़ुतबा

(मई, 1963 ई. में हज के मौक़े पर मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी (रह.) ने ये तक़रीरें 5, 6 और 7 ज़िलहिज्जा को अस्र की नमाज़ के बाद ख़ाना-काबा ज़मज़म के मक़ाम पर से की थीं।)

अल्लाह की तारीफ़ के बाद

मुसलमान भाइयो! यह हम सबकी बहुत बड़ी ख़ुशनसीबी है कि अल्लाह तआला ने हमको अपने इस घर की ज़ियारत की तौफ़ीक़ दी और यह मौक़ा नसीब फ़रमाया कि हम यहाँ हज के लिए आएँ और उन 'रौशन निशानियों'[1] को देखें जो इस सरज़मीन में आम तौर पर और ख़ाना-काबा और मसजिदे-हराम में ख़ास तौर पर नुमायाँ नज़र आ रही हैं। हक़ीक़त यह है कि यहाँ आकर एक आदमी अगर खुली आँखों से देखे और समझने की कोशिश करे तो उसको हर तरफ़ अल्लाह की निशानियाँ ही निशानियाँ नज़र आएँगी, जिन्हें देखकर उसका दिल ईमान से भर जाएगा।

भाइयो! आज से चार हज़ार साल पहले यह जगह बिल्कुल एक सुनसान वादी थी। दुनिया से अलग-थलग, इस रेगिस्तान में, इन पहाड़ों के बीच इस वादी में, अल्लाह का एक बन्दा आता है और एक चारदीवारी खींचकर एलान करता है कि यह अल्लाह का घर है, और दुनिया भर को पुकार देता है कि आओ, इस घर का हज करो। अब देखिए कि आख़िर क्या बात है कि चार हज़ार साल से दुनिया भर के इनसान इस पुकार पर लब्बैक-लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ, मैं हाज़िर हूँ) कहते हुए इस घर की तरफ़ खिंचे चले आते हैं और आज तक इतिहास में एक साल भी ऐसा नहीं गुज़रा है

[1] इशारा है क़ुरआन मजीद की उस आयत की तरफ़ जिसमें अल्लाह तआला ने ख़ाना-काबा के बारे में फ़रमाया है– "इसमें रौशन निशानियाँ हैं।" (क़ुरआन, 3 : 97)

कि इसका हज और इसके गिर्द तवाफ़ न हुआ हो। कोई दूसरा इनसान ज़रा हिम्मत करके कोई जगह बनाकर तो देखे और उसको दुनिया भर का क़िबला (केन्द्र) बनाने के लिए अपनी पूरी कोशिश करके देख ले। उसे ख़ुद मालूम हो जाएगा कि कितने इनसान उसकी तरफ़ खिंचकर आते हैं। यह खुली निशानी है इस बात की कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) हक़ीक़त में अल्लाह तआला के नबी थे। उन्होंने असल में अल्लाह तआला ही की मरज़ी और उसके हुक्म से यह घर बनाया था। उनके बनाए हुए इस घर को वाक़ई अल्लाह तआला ने क़बूल कर लिया है और यह भी अल्लाह ही का हुक्म था जिसके तहत उन्होंने दुनिया को हज की आम दावत (आमंत्रण) दी थी। इस वजह से इस घर को और इस आम दावत को यह कशिश नसीब हुई कि हज़ारों बरस से दुनिया भर के इनसान इसकी तरफ़ खिंचे चले आ रहे हैं। क़ुरआन मजीद इस बात की गवाही देता है कि वह अल्लाह ही था जिसने इस घर को बनाने के लिए इस जगह को चुना और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को हुक्म दिया कि इसका हज करने के लिए दुनिया भर को पुकार दें—

"और याद करो वह वक़्त जब हमने इबराहीम के लिए इस घर की जगह तजवीज़ की थी, इस हिदायत के साथ कि मेरे साथ किसी को शरीक न कर और मेरे घर को तवाफ़ करनेवालों और क़ियाम, रुकूअ़ व सजदे करनेवालों के लिए पाक रख और लोगों को हज के लिए पुकार दे कि वे आएँ तेरे पास हर दूर-दराज़ मक़ाम से पैदल और ऊँटों पर सवार।" (क़ुरआन, 22 : 26-27)

भाइयो! यह ख़ुदा के उसी फ़रमान की बरकत है कि आज लाखों आदमी 'लब्बै-क, लब्बै-क अल्लाहुम-म लब्बैक' (मैं हाज़िर हूँ, मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ,) की आवाज़ें बुलन्द करते हुए गरोह के गरोह यहाँ आ रहे हैं और परवानों की तरह इस ख़ाना-काबा के चारों ओर घूम रहे हैं। यह उन रौशन निशानियों में से पहली और नुमायाँतरीन निशानी है जो इस घर में आप देख रहे हैं।

अब ज़रा एक और निशानी पर ग़ौर कीजिए। इस घर को जब बनाया जा रहा था उसी वक़्त अल्लाह तआला ने एलान कर दिया था कि हम इसे लोगों का मरकज़ (केन्द्र) ही नहीं, बल्कि अम्न (शान्ति) का घर बना देंगे।

"और यह कि हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए केन्द्र और शान्ति की जगह ठहराया था।" (क़ुरआन, 2 : 125)

इस एलान पर चार हज़ार साल गुज़र चुके हैं और उस वक़्त से आज तक यह शान्ति ही का घर बना हुआ है। न सिर्फ़ यह ख़ुद शान्ति का घर है, बल्कि जिस शहर में बना हुआ है वह भी शान्ति का शहर है और इसके चारों तरफ़ कई-कई मील तक पूरा क्षेत्र शान्ति का एक ऐसा सेंटर है जिसके अन्दर किसी क़िस्म की बदअमनी नहीं हो सकती। आज पूरी ज़मीन पर इस पाक ख़ाना-काबा के सिवा कोई दूसरा गज़-भर का टुकड़ा भी ऐसा नहीं पाया जाता जिसे इस मानी में अम्न का घर होने का मक़ाम हासिल हो, और आज ही नहीं कभी दुनिया में कोई दूसरा ऐसा हरम (शान्ति-स्थल) नहीं पाया गया जिसका वैसा एहतिराम किया गया हो जो इस हरम का हुआ है। इसकी इज़्ज़त और बड़ाई का अन्दाज़ा इस बात से कीजिए कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के वक़्त से हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* के वक़्त तक ढाई हज़ार साल का ज़माना अरब की सरज़मीन में ऐसा गुज़रा है जिसमें यह मुल्क शासन-विधान से महरूम था। यहाँ कोई हुकूमत न थी। यहाँ कोई क़ानून न था। हर तरफ़ बदअम्नी फैली हुई थी। क़त्ल, ख़ून और ग़ारतगरी का ज़ोर था। किसी के लिए जान, माल और इज़्ज़त व आबरू की अमान (सुरक्षा) न थी। लेकिन इस पूरे देश में सिर्फ़ यह पाक हरम ही एक ऐसा हिस्सा था जहाँ इन 25 सदियों के दौरान में पूरा अम्न क़ायम रहा। अरब के वे लोग जो शौक़ के तौर पर ख़ून-ख़राबा और लूटमार करते थे, जिनके क़बीलों में सौ-सौ साल तक लगातार लड़ाइयाँ ठनी रहती थीं, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक बदला लेने का चक्कर चलता रहता था, उनका भी यह हाल था कि इस हरम की हदों (सीमाओं) में पहुँचते ही उनके हाथ रुक जाते थे, यहाँ तक कि अगर कोई आदमी अपने बाप के क़ातिल को भी यहाँ पा लेता था तो उससे बदला न ले सकता था। यह इसके सिवा और किस

चीज़ का नतीजा माना जा सकता है कि अल्लाह तआला ने ख़ुद इस पाक इलाक़े को हरम और अम्न का घर बना दिया था। यह अज़मतवाले अल्लाह के फ़रमान ही की बरकत थी कि "जो इसमें दाख़िल हुआ वह अमून में आ गया।" (क़ुरआन, 3 : 97) अल्लाह की क़ुदरत के सिवा दुनिया में कोई ताक़त उस इन्तिहाई बदनज़्मी और लाक़ानूनियत के ज़माने में ढाई हज़ार बरस तक यहाँ अमून (शांति) नहीं क़ायम रख सकती थी। इसी निशानी की तरफ़ अल्लाह तआला हक़ के इनकारियों को तवज्जोह दिलाता है कि—

> "क्या ये लोग देखते नहीं कि हमने एक पुरअमून हरम बना रखा है। हालाँकि इनके आसपास ही लोग उचक लिए जा हैं।"
>
> (क़ुरआन, 29 : 67)

इससे भी ज़्यादा बड़े पैमाने पर एक और निशानी है जो इस सरज़मीन (मक्का) में पाई जाती है। आप ज़रा गहरी निगाह से अरब के इतिहास और अरब देश पर नज़र डालें तो आपको मालूम होगा कि अरबी क़ौम का एक क़ौम की हैसियत से बाक़ी रहना और अरबी ज़बान (भाषा) का उस क़ौम की ज़बान की हैसियत से ज़िन्दा रह जाना भी अल्लाह के इस घर की बरकत का नतीजा है। दुनिया में आज कोई देश ऐसा नहीं पाया जाता, न कभी पाया गया है जिसका रक़बा (क्षेत्रफल) तो इतना फैला हुआ हो जितना अरब का है और फिर उस पूरे देश में एक-ही ज़बान (भाषा) बोली जाती हो। और दुनिया में कोई ऐसा देश भी न आज मौजूद है, न कभी मौजूद रहा है जिसमें चार हज़ार साल से एक ही ज़बान बोली जा रही हो। इतनी लम्बी मुद्दत में ज़बानें बदलकर कुछ-से-कुछ हो जाती हैं, और इतनी लम्बाई-चौड़ाईवाले देशों में एक ही नहीं, बीसियों बल्कि सैकड़ों ज़बानें (भाषाएँ) बन जाती हैं। ख़ास तौर से जिस देश में हज़ारों साल तक बदअमूनी रही हो, और जो देश सादियों क़बाइली लड़ाइयों की जगह बना रहा हो, उसके अन्दर तो यह एकता बाक़ी रह जाना बिल्कुल ही एक अजूबा है। लेकिन यह चमत्कार भी अल्लाह तआला की क़ुदरत ने इस सरज़मीन में करके दिखा दिया, और इसका ज़रीआ यही ख़ाना-काबा और यही हज था।

यह ख़ाना-काबा और यह हज इसका ज़रीआ कैसे बना? इसकी थोड़ी तशरीह यह है कि जब अल्लाह ने इस घर को मरकज़ (केन्द्र) बनाया और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को हुक्म दिया कि लोगों को इसका हज करने की आम दावत दे दें, तो इसके साथ यह भी फ़ैसला फ़रमा दिया कि साल में चार महीने (ज़ी-क़ादा, ज़िलहिज्जा और मुहर्रम हज के लिए और रजब उमरे के लिए) मुहतरम (प्रतिष्ठित) क़रार दे दिए जाएँ। हुक्म दे दिया गया कि इन चार महीनों में लड़ाई बन्द रहे, हज और उमरे के लिए आने-जानेवालों को कोई न छेड़े, और उन जानवरों पर भी कोई हाथ न डाले जो क़ुरबानी के लिए अल्लाह के घर की तरफ़ लाए जा रहे हों। यह हुक्म सिर्फ़ ख़ुदा के एक बन्दे की ज़बान से अदा हुआ था। उसके हाथ में कोई हुकूमत न थी, उसके पास कोई फ़ौज, पुलिस या अदालत न थी कि उसके ज़ोर से वह इस क़ानून को जारी करता। मगर उसकी पुश्त पर सारे जहान के रब की ताक़त थी जिसके ज़ोर से यह हुक्म लागू हुआ और अरब के बाशिन्दे पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी पैरवी करते चले गए।

इस हुक्म की बरकत यह थी कि अरब की सरज़मीन को हर साल चार महीने अमन-चैन के मिल जाते थे जिनसे फ़ायदा उठाकर देश के हर कोने से क़ाफ़िले अल्लाह के घर की तरफ़ आते थे। क़बीलों के लोग एक-दूसरे से मिलते थे, आज़ादी के साथ तिजारत (व्यापार) होती थी, मेले लगते थे, शायरी और ख़िताबत (तक़रीरों और भाषणों) के मुक़ाबले होते थे, और अरब के दूसरे हिस्सों में भी काफ़िलों का आना-जाना लगा रहता था। इस तरह अरबों में एक क़ौम होने का एहसास ज़िन्दा रहा। उनकी ज़बान महफ़ूज़ रही और वह तमाम अरबों की एक ही ज़बान बनी रही। उनकी तहज़ीब और उनकी रिवायतें बाक़ी रहीं। और यह क़ौम कट-कटकर मर जाने से बच गई। यह सब इसी घर की देन और इसी घर का करिश्मा है। इसकी बदौलत एक क़ौम मरने से बची, एक ज़बान मिटने से बची और एक देश के अन्दर एक ही ज़बान और एक ही तहज़ीब बरक़रार रही। यह घर न होता और यह हज न होता तो हज़ारों बरस की बदअमनी, बदनज़्मी और

लाक़ानूनियत से अरब क़ौम और अरबी ज़बान और तहज़ीब कभी की मिट चुकी होती।

एक और निशानी देखिए। जिस वक़्त हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने यहाँ अपनी एक बीवी और एक बच्चे को लाकर छोड़ा था, उस वक़्त यहाँ कोई शहर तो दरकिनार बराये नाम कोई छोटा-सा गाँव तक न था। इस हालत में उनकी पाक ज़बान से यह दुआ निकलती है—

"ऐ हमारे परवरदिगार! मैंने अपनी नस्ल का एक हिस्सा लाकर निर्जल और ऊसर घाटी में बसा दिया है; तेरे अज़मतवाले घर के पास, ऐ परवरदिगार! इसलिए कि वे नमाज़ क़ायम करें। इसलिए लोगों के दिल इनकी तरफ़ माइल कर दे और इनको फलों से रोज़ी दे ताकि ये शुक्रगुज़ार हों।" (क़ुरआन, 14 : 37)

अब देखिए कि इस दुआ का एक-एक शब्द किस तरह पूरा किया गया। अल्लाह के इस घर के चारों तरफ़ यह शहर मक्का आबाद हुआ। हज ने इसको तमाम अरब का मरकज़ (सेंटर) बना दिया। तिजारत करनेवाले क़ाफ़िले अरब के हर हिस्से से यहाँ आने लगे और यहाँ से गुज़रने लगे। इस्लाम से सदियों पहले यह शहर एक तिजारती मण्डी बन चुका था और दुनिया-भर का माल खिंच-खिंचकर यहाँ आता था। आज भी अब आप देखेंगे कि दुनिया की कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो मक्का के बाज़ारों में आपको न मिल जाती हो। इसी चीज़ को अल्लाह तआला क़ुरआन मजीद में इस तरह बयान फ़रमाता है—

"क्या हमने मक्कावालों के लिए अम्नवाला 'हरम' नहीं बना दिया है जिसकी तरफ़ हर तरह के फल खिंचे चले आते हैं, हमारी तरफ़ से रोज़ी के तौर पर?" (क़ुरआन, 28 : 57)

भाइयो! अरब और अरबी क़ौम और अरबी ज़बान पर यह सारी इनायतें जिस बड़े मक़सद के लिए फ़रमाई गई थीं वह हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और उनके बेटे हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) की एक दुआ को पूरा करना था जिसे क़ुरआन मजीद इस तरह करता है—

"और जब इबराहीम और इसमाईल इस घर की बुनियादें उठा रहे थे तो वे यह दुआ कर रहे थे कि 'ऐ हमारे रब! हमारी इस कोशिश को क़बूल फ़रमा ले, यक़ीनन तू सब ही कुछ सुनने और जाननेवाला है। ऐ हमारे पालनहार! और हम दोनों को अपना मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) बना ले और हमारी नस्ल से एक ऐसी उम्मत (समुदाय) पैदा कर जो तेरी मुस्लिम (आज्ञाकारी) हो, और हम को हमारी इबादत के तरीक़े बता और हमारे क़ुसूर माफ़ कर। बेशक तू ही तौबा क़बूल करनेवाला, रहम करनेवाला है। ऐ हमारे रब! और उन लोगों के अन्दर ख़ुद उन्हीं में से एक रसूल भेज जो उनको तेरी आयतें सुनाए और उनको किताब व हिक्मत की तालीम दे और उनका तज़किया करे। यक़ीनन तू ही ज़बरदस्त हिकमतवाला है।"

(क़ुरआन, 2 : 127-129)

यह था वह अस्ल मक़सद जिसके लिए अरब क़ौम और अरबी ज़बान को ज़िन्दा रखने का वह बन्दोबस्त फ़रमाया गया था जिसकी तफ़सील अभी आपने सुनी है। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और इसमाईल (अलैहि॰) की यह दुआ, और इसके नतीजे में आख़िरकार इसी शहर मक्का से अरबी मुहम्मद (सल्ल॰) को पैदा किया जाना और फिर यहीं से एक बड़ी शानो-शौकतवाली उम्मत का उठना जो दुनिया में क़ियामत तक के लिए तौहीद की अलम्बरदार बनी, यह अल्लाह तआला की निशानियों में से सबसे बड़ी निशानी है जिसका नज़ारा आप इस पाक हरम में कर रहे हैं।

यही शहर मक्का है जिससे हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने अल्लाह की तरफ़ दावत का आग़ाज़ फ़रमाया था और यही सफ़ा की पहाड़ी है जिसपर खड़े होकर आप (सल्ल॰) ने सबसे-पहले क़ुरैश के ख़ानदान को नाम-बनाम पुकारकर एक अल्लाह, जिसका कोई शरीक नहीं, पर ईमान लाने की नसीहत की थी। इस शहर के सरदारों ने नबी (सल्ल॰) की इस दावत को दबा देने के लिए अपना सारा ज़ोर लगा दिया। यह हरम की ज़मीन, यह अबू-क़ुबैस का पहाड़ और ये मक्का की घाटियाँ सब उस ज़ुल्मो-सितम के गवाह हैं जो तेरह साल तक नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथियों पर

तोड़ा गया था। मगर आख़िरकार उन सब लोगों ने नीचा देखा जिन्होंने मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत को नीचा दिखाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया था। देख लीजिए, आज यहाँ अबू-जहल और अबू-लहब का नाम लेनेवाला कोई नहीं है और इस हरम के मीनारों से पाँचों वक़्त 'अशहदु अन-न मुहम-मदर रसूलुल्लाह' "मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं" की आवाज़ बुलन्द हो रही है।

यही ख़ाना-काबा है जिसकी दीवार के नीचे एक दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) आराम फ़रमा रहे थे और हाल यह था कि मक्का में हर तरफ़ मुसलमानों पर बेतहाशा ज़ुल्म हो रहा था। इस हालत में हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अल-अरत (रज़ि॰) ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! अब तो ज़ुल्म की हद हो गई है। क्या आप हमारे लिए दुआ न फ़रमाएँगे? इस पर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "यह काम तो पूरा होकर रहेगा, यहाँ तक कि एक वक़्त आएगा जब एक मुसाफ़िर 'सनआ' से हज़र-मौत तक बेख़ौफ़ और बिना ख़तरे के सफ़र करेगा। मगर तुम लोग बेसब्री कर रहे हो।" अल्लाह के रसूल की यह बात हर्फ़-ब-हर्फ़ (अक्षरशः) पूरी हुई और कुछ साल के अन्दर ही वह वक़्त आ गया जब इस्लाम की हुकूमत ने पूरे अरब प्रायद्वीप में पूरी तरह अमन-चैन क़ायम कर दिया।

यही ख़ाना-काबा है जिसके प्रबन्धक उसमान-बिन-तलहा से एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने चाबी माँगी, ताकि अल्लाह के घर में दाख़िल होकर इबादत करें। उसने न सिर्फ़ यह कि इनकार कर दिया, बल्कि नबी (सल्ल॰) के साथ सख़्त बदकलामी की। आप (सल्ल॰) ख़ामोशी के साथ उसकी सारी सख़्त-सुस्त बातें सुनते रहे और फिर बड़ी संजीदगी के साथ फ़रमाया, "ऐ उसमान! तुम देख लोगे कि एक दिन यह चाबी मेरे हाथ में होगी और मुझे इख़्तियार होगा कि जिसे चाहूँ दे दूँ।" उसमान ने कहा, "अगर ऐसा हुआ तो वह दिन क़ुरैश के लिए हलाकत और रुसवाई का दिन होगा।" अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं, वह क़ुरैश के लिए इज़्ज़त और बुलन्दी का दिन होगा।" यह बात भी पत्थर की लकीर साबित हुई। इस बात को दस साल से ज़्यादा मुद्दत न गुज़री थी कि मक्का फ़तह

हुआ। उसी उसमान-बिन-तलहा को नबी (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि ख़ाना-काबा की चाबियाँ पेश करे। उसने बिना कुछ कहे-सुने हाज़िर कर दीं। हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने आग्रह किया कि ख़ाना-काबा का चाबियों की जिम्मेदारी बनी-हाशिम के सुपुर्द कर दी जाए लेकिन आप (सल्ल०) ने वह कुँजी उसी उसमान बिन-तलहा को अता की और फ़रमाया, "ले लो इसे हमेशा-हमेशा के लिए, तुमसे इसको कोई न छिनेगा सिवाय ज़ालिम के।" यह इरशाद (कथन) भी पूरा होकर रहा। आज तक इस घर की कुँजियों का ज़िम्मेदार वही ख़ानदान चला आ रहा है जिसे मक्का फ़तह के दिन नबी (सल्ल०) ने इसकी कुँजी सुपुर्द फ़रमाई थी।

यही शहर मक्का है जिसके लोगों से नबी (सल्ल०) ने अपनी दावत के शुरू के ज़माने में फ़रमाया कि मैं एक ऐसा कलिमा तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ जिसे अगर तुम मान लोगे तो अरब और ग़ैर-अरब सब इसकी बदौलत तुम्हारे ताबे (अधीन) हो जाएँगे। क़ुरैश के लोगों ने उस वक़्त इस बात को झूठ समझा था। वे इसके बिल्कुल उलट यह समझ रहे थे कि इस 'कलिमे' को हमने क़बूल कर लिया तो तमाम अरब हमपर टूट पड़ेगा और हमारी रियासत तो क्या, हमारा वुजूद भी यहाँ बाक़ी न रह सकेगा। वे कहते थे कि "अगर हम तुम्हारे साथ इस हिदायत की पैरवी करने लगें तो हम अपनी जगह से उचक लिए जाएँगे।" लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की मुबारक ज़बान से जो कुछ निकला था वह लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ पूरा होकर रहा। क़ुरैश के जिन लोगों ने नबी (सल्ल०) की यह बात अपने कानों से सुनी थी उन्होंने अपनी आँखों से देख लिया कि कुछ ही साल के अन्दर अरब और ग़ैर-अरब इस्लामी ख़िलाफ़त के ताबे-फ़रमान (अधीन) हो गए और क़ुरैश ही के लोग इस शानदार सल्तनत के फ़रमाँरवा (शासक) हुए।

हज़रत इबराहीम (अलैहि०) के वक़्त से आख़िरी नबी मुहम्मद (सल्ल०) के ज़माने तक यह घर सिर्फ़ अरब का मरकज़ था और अरब ही उसके हज के लिए आते थे। मगर जब अल्लाह तआला ने आप (सल्ल०) की मुबारक ज़बान से यह एलान कराया कि "जहाँ भी तुम हो, नमाज़ में तुम अपना रुख़ इसी की तरफ़ फेरो।" और जब ज़मीन और आसमान के मालिक ने

अपने आख़िरी नबी के ज़रीए से यह फ़रमान जारी किया कि "अल्लाह का हक़ है लोगों पर इस घर का हज, जो आदमी भी इस तक पहुँचने की कुदरत रखता हो।" तो यह घर सारी दुनिया के लिए मरकज़ और क़िबला बन गया। आज दुनिया का कोई कोना ऐसा नहीं है, जहाँ इस घर की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़नेवाले मौजूद न हों, और कोई ख़ित्त-ए-ज़मीन (भू-भाग) ऐसा नहीं है जहाँ से एक अल्लाह के माननेवाले इसका हज करने के लिए न आ रहे हों। जिस वक़्त हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़बान से इन हुक्मों का एलान हुआ था उस वक़्त इस्लामी हुक्मों का असर सिर्फ़ मदीना शहर और उसके आसपास एक छोटे-से इलाक़े तक महदूद (सीमित) था। कोई आदमी भी उस वक़्त यह अन्दाज़ा न कर सकता था कि ये हुक्म पूरी धरती पर और इतने बड़े पैमाने पर लागू होंगे और एक वक़्त ऐसा आएगा जब तीस लाख आदमी दुनिया के हर हिस्से से खिंचकर यहाँ जमा होंगे। पूरी कायनात के ख़ुदा की ताक़त के सिवा और कौन-सी ताक़त ऐसी हो सकती थी जो इस ख़ाना-काबा को यह मक़बूलियत, यह मरकज़ियत और यह कशिश अता कर देती।

भाइयो! ये अल्लाह तआला की बेशुमार निशानियों में से कुछ नुमायाँ निशानियाँ हैं जिनकी तरफ़ मैंने आपको तवज्जोह दिलाई है। मैं चाहता हूँ कि जब अल्लाह तआला ने आपको इस सरज़मीन में आने की ख़ुशनसीबी बख़्शी है तो आप इसका पूरा फ़ायदा उठाएँ और यहाँ से गहरा, सच्चा और पक्का ईमान लेकर जाएँ। यहाँ अल्लाह की जो निशानियाँ नज़र आती हैं वे आदमी का दिल इस यक़ीन से भर देने के लिए काफ़ी हैं कि यह घर वाक़ई अल्लाह का घर है, इसको बनानेवाले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और इसमाईल (अलैहि॰) हक़ीक़त में अल्लाह के रसूल थे। फिर जिन बड़ी शानवाली हस्ती की बदौलत यह घर हमेशा-हमेशा के लिए शिर्क और बुतपरस्ती से पाक होकर तमाम दुनिया के तौहीदवालों का क़िबला, मरकज़ (केन्द्र) बना, उसकी नुबुव्वत और रिसालत हर शक और शुब्हा से ऊपर है सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम। (अल्लाह की उनपर रहमत वह बरकत हो)

दूसरा ख़ुतबा

अल्लाह तआला की बड़ाई और तारीफ़ के बाद –

मुसलमान भाइयो! हर इबादत का एक ज़ाहिर होता है और एक बातिन। ज़ाहिर से मुराद वह अमली शक्ल है जो किसी इबादत को अदा करने के लिए मुक़र्रर की गई है और बातिन से मुराद वे मानी हैं जो उस शक्ल में छिपे होते हैं और जिनको ज़ाहिर करने के लिए अमल की वह शक्ल मुक़र्रर की जाती है। मिसाल के तौर पर नमाज़ का ज़ाहिर यह है कि आदमी क़िबला रुख़ खड़ा हो, रुकूअ़ करे, सजदा करे, बैठे और इन ज़ाहिर कामों से नमाज़ की जो शक्ल क़ायम की जाती है उससे मक़सूद असल में इस मतलब का इज़हार है कि बन्दा अपने रब के हुज़ूर बन्दगी का एतिराफ़ करने के लिए हाज़िर हुआ है, उसके मुक़ाबले में अपने घमण्ड को छोड़ रहा है, उसकी बड़ाई और अपनी कमज़ोरी को मान रहा है, और उसके आगे अपनी वे दरख़ास्तें पेश कर रहा है जो उसकी ज़बान से अदा हो रही हैं। अब देखिए, जो आदमी नमाज़ की ज़ाहिरी शक्ल को ठीक-ठीक हुक्मों और हिदायतों के मुताबिक़ क़ायम कर दे वह बिना किसी शक के नमाज़ अदा करने की कानूनी शर्तों को पूरी कर देता है। उसके बारे में आप यह नहीं कह सकते कि उसने नमाज़ नहीं पढ़ी, या उसके ज़िम्मे फ़र्ज़ बाक़ी रह गया। लेकिन आप ग़ौर करेंगे तो ख़ुद महसूस करेंगे कि नमाज़ का पूरा-पूरा फ़ायदा वही आदमी उठा सकता है जो नमाज़ के आमाल में से हर अमल करते वक़्त उसकी रूह को भी निगाह में रखे, और नमाज़ के अज़कार में से हर ज़िक्र को ज़बान से अदा करते हुए उसके मतलब की तरफ़ भी मुतवज्जोह रहे।

ऐसा ही मामला हज का है। इसको अदा करने का जो तरीक़ा मुक़र्रर किया गया है उसपर आप चाहे समझकर अमल करें या बे- समझे-बूझे, बहरहाल जब आप ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए मनासिक (हज के अरकान) अदा कर देंगे तो हज अदा हो जाएगा, और फ़र्ज़ से यक़ीनन आप बरी हो

जाएँगे। लेकिन हज की इस ज़ाहिरी शक्ल के हर-हर जुज़ (अंश) में जो मानी (अर्थ) छिपे हैं उनको भी अगर आप अच्छी तरह समझ लें और हज के आमाल को अंजाम देते वक़्त हर अमल की ग़रज़ और ज़रूरत की तरफ़ भी ध्यान रखें तो इससे हज का मक़सद पूरा हो जाएगा और आप हज के फ़ायदों से पूरी तरह फ़ायदा उठानेवाले होंगे। इसी ग़रज़ के लिए आज मैं आपके सामने हज के आमाल में से एक-एक अमल के मानी सीधे-सीधे और मुख़्तसर तरीक़े से बयान करना चाहता हूँ।

इहराम

हज के आमाल में से सबसे पहला अमल इहराम है। बाहर से आने वाला कोई हाजी मीक़ात (सीमा) से उस वक़्त तक नहीं गुज़र सकता जब तक वह अपने लिबास (कपड़े) उतारकर इहराम न बाँध ले और इसी तरह मक्का मुअज़्ज़मा से हज की नीयत करनेवाले को भी सबसे पहले लिबास बदलकर इहराम बाँधना होता है। यह एक बहुत ही फ़क़ीराना लिबास है जिसमें आदमी बस एक तहमद (लुंगी) बाँध लेता है, एक चादर कंधों पर डाल लेता है, और सिर नंगा रखता है। यह इस अमल की ज़हिरी सूरत है। मगर ग़ौर से देखिए कि इस थोड़े-से काम में कितने गहरे मानी (अर्थ) छिपे हैं।

इसके मानी हैं कि अल्लाह तआला हज शुरू करने से पहले हमारे वे सारे लिफ़ाफ़े उतरवा देना चाहता है जो हमने अपने ऊपर डाल रखे हैं, जिनके अन्दर हममें से हर एक ने अपने आपको अपनी अस्ल हक़ीक़त से कुछ-न-कुछ ज़्यादा बना रखा है। वह कहता है कि तुम बन्दे हो और बन्दे से बढ़कर कुछ नहीं हो। इसलिए मेरे दरबार में हाज़िर होना चाहते हो तो सिर्फ़ बन्दे बनकर आओ। तुम कहीं के बादशाह या किसी मुल्क के सदर (राष्ट्रपति) हो तो हुआ करो, कोई जनरल हो, मंत्री हो, रईस हो या जो कुछ भी हो, होते रहो। मेरे हुज़ूर में तुम्हें अपनी ये सारी हैसियतें ख़त्म करके सिर्फ़ एक बन्दे की हैसियत से आना होगा। इस तरह इहराम का यह लिबास हर इनसान को बन्दगी के मक़ाम पर लाकर खड़ा कर देता है,

उसकी हर इम्तियाज़ी शान मिटा देता है, और एक बड़े-से-बड़े आदमी को भी एक कम-से-कम दरजे के आदमी की सतह पर ले आता है। आप इहराम की हालत में हाजियों के किसी मजमे पर निगाह डालकर देखें तो आपको किसी तरह यह मालूम न हो सकेगा कि इनमें कौन ऊँचा और कौन नीचा है, कौन अमीर और कौन ग़रीब है, कौन राजा और कौन प्रजा है। अल्लाह के दरबार में सब एक ही तरह के फ़क़ीर नज़र आएँगे।

ऊँच-नीच बराबर करने के साथ यह इहराम मुसलमानों के बीच तमाम क़ौमी, नस्ली और वतन के भेदों को भी ख़त्म कर देता है। इस्लाम के माननेवाले दुनिया के हर हिस्से से चलकर आते हैं। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, हर तरफ़ से देश-देश के लोग तरह-तरह के लिबास पहने हुए अपने घरों से चलते हैं। मगर ज्यों ही कि वे इस्लाम के मरकज़ से एक ख़ास फ़ासले पर पहुँचते हैं, उनको यकायक 'मीक़ात' की सरहद पर रोककर उनके तमाम क़ौमी लिबास उतरवा दिए जाते हैं और सबको एक ही तरह का लिबास पहना दिया जाता है ताकि कायनात के रब के दरबार में जब वे हाज़िर हों तो इनसान और मुसलमान के सिवा कुछ न हों। मुसलमानों के अन्दर एक मिल्लत (मिल्लते-वाहिदा) होने का एहसास पैदा करने की इससे ज़्यादा कारगर तदबीर शायद ही कोई दूसरी हो सके। आपके सामने लाखों हाजियों का एक सैलाब रवाँ होता है जिसमें सैकड़ों क़ौमियतों के लोग एक-दूसरे के साथ गुज़र रहे होते हैं। मगर यह 'इहराम' की बरकत है कि हर देखनेवाली निगाह उनको एक मिल्लत और एक ही क़ौम की हैसियत से देखती है। और उनके सारे वतनी और नसली फ़र्क़ दबकर रह जाते हैं।

फिर यह इहराम आदमी को हैवानियत से दूर और फ़रिश्तों के मक़ाम से क़रीब कर देता है। इस हालत में वह कोई जूँ तक नहीं मार सकता। कोई बाल तक नहीं उखाड़ सकता। किसी जानवर का शिकार ख़ुद करना तो दूर, दूसरे को किसी क़िस्म की मदद भी शिकार में नहीं दे सकता। अपने जिस्म को सजाना-सँवारना भी उसके लिए जाइज़ नहीं रहता। उसकी अपनी बीवी भी उसके लिए हराम हो जाती है जो आम हालतों में उसके लिए हलाल है, यहाँ तक कि वह उसकी तरफ़ किसी शहवानी मैलान (वासनात्मक

इच्छा) तक का इज़हार नहीं कर सकता। उसके लिए फ़हशगोई, बदकलामी, लड़ाई-झगड़ा सब कुछ मना हो जाता है, यहाँ तक कि वह अपने नौकर को भी डाँटने का अधिकार नहीं रखता। इसके मानी ये हैं कि इहराम बाँधते ही आदमी अल्लाह का फ़क़ीर बन गया और उसने अपने मन की तमाम ख़ाहिशों को त्याग दिया। अब दुनिया की हर चीज़ को उसकी तरफ़ से अमन और सलामती का पैग़ाम है। अब किसी को उससे नुक़सान पहुँचने का डर नहीं। अब वह किसी के लिए भी दमनकारी, ज़ुल्म व सितम करने वाला नहीं रहा। अब वह दुनिया की लज़्ज़तों से किनाराकश होने और घमण्ड का हर ज़र्रा अपने मन से निकाल देने के बाद बस एक बेबस बन्दा है जो अपने ख़ुदा के हुज़ूर अपनी न्याज़मन्दी (इताअत) पेश करने जा रहा है।

भाइयो! यह है इहराम की असूल रूह। आप जब नहा-धोकर या वुज़ू करके इहराम बाँधते हैं और उन क़ायदों की पाबन्दी करते हैं जो इहराम की हालत के लिए मुक़र्रर किए गए हैं, तो इससे अमल की सिर्फ़ ज़ाहिरी शक्ल क़ायम होती है। यह शक्ल बनाते हुए अगर आप का मन इस ख़्याल से ख़ाली हो कि यह शक्ल आपने क्यों बनाई है तो यह मानो एक जिस्म होगा जिसमें जान न हो। जान इसमें उसी वक़्त पड़ेगी जब पूरे शऊर और इरादे के साथ अपने अन्दर वे बातिनी कैफ़ियतें (आन्तारिक दशाएँ) भी पैदा कर लें, जो असूल में इहराम से मक़सूद हैं। क़ानून की निगाह में तो हर आदमी मुहरिम है जिसने इहराम की पाबन्दियों में से किसी को न तोड़ा हो। मगर ख़ुदा की निगाह में असूल मुहरिम (इहराम बाँधे हुए) वही है जो इहराम बाँधते ही हक़ीक़त में एक फ़क़ीर और एक बेबस बन्दा बनकर रह गया हो, जिसने अपने दिमाग़ से घमण्ड की हवा निकाल दी हो, जिसने क़ौमी और नस्ली भेद-भाव को भी अपने ज़ेहन से निकाल बाहर किया हो, जो ख़ुदा की मख़्लूक़ के लिए सरापा रहम करनेवाला और भलाई चाहनेवाला बन गया हो, और जिसने दुनियवी ज़िन्दगी की ज़ीनतों से मुँह मोड़कर कम-से-कम ये चन्द दिन तो सिर्फ़ अपने रब से लौ लगाने के लिए ख़ास कर लिए हों।

तलबिया

इहराम बाँधने के बाद आप तलबिया शुरू कर देते हैं जिसके अलफ़ाज़ (शब्द) ये हैं –

"लब्बैक, अल्ला-हुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क लब्बैक, इन्नल हम्-द वन्-निअ-म-त ल-क वल मुल्क, ला शरी-क लक।"

"मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, मैं हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं; मैं हाज़िर हूँ, यक़ीनन सारी तारीफ़ तेरे ही लिए है, सारे एहसानात तेरे ही हैं, बादशाही सरासर तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।"

इन शब्दों पर ज़रा ग़ौर कीजिए। इनके अन्दर ख़ुद ये मानी छिपे हैं कि ग़ुलाम को उसके आक़ा ने बुलाया है और ग़ुलाम उसके जवाब में, 'मैं हाज़िर हूँ, मैं हाज़िर हूँ' कहता हुआ और अपने मालिक की तारीफ़ के गुण गाता हुआ दौड़ा चला जा रहा है। उसे अल्लाह के घर की तरफ़ बुलाया गया। उसने कहा : मैं हाज़िर। 'अरफ़ात' बुलाया गया। उसने कहा मैं हाज़िर। 'मुज़दल्फ़ा' तलब किया गया। उसने कहा : मैं हाज़िर। 'मिना' तलब किया गया। उसने कहा : मैं हाज़िर। इस सारी दौड़-धूप के दौरान में ये शब्द आप ज़बान से कह रहे हैं तो क़ानून का तक़ाज़ा पूरा हो जाएगा, मगर इस तलबिया की असल रूह यह है कि इन शब्दों को ज़बान से अदा करते हुए आप अपने दिल की गहराइयों में हक़ीक़त में यह महसूस करें कि आप अल्लाह के बन्दे और ग़ुलाम हैं। उसकी तरफ़ से आपको बुलाया गया है, और जहाँ-जहाँ हाज़िर होने की तलबी होती जा रही है वहाँ-वहाँ आप मैं हाजिर, मैं हाज़िर, कहते हुए दौड़े चले जा रहे हैं। इस लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ) में एक नशा है जो ज़रूर ही हर उस सच्चे बन्दे पर चढ़ जाएगा जिसे यह एहसास हो कि कायनात के ख़ुदा की तरफ़ से इस जैसी नाचीज़ (तुच्छ) हस्ती को बुलाया जा रहा है।

यह नसीब? अल्लाहु अकबर, लूटने की जाए है।

हरम की हाज़िरी

बाहर से आनेवाले हर हाजी की फ़ितरी ख़्वाहिश यह होती है, और यही उसको करना भी चाहिए कि मक्का मुअ़ज़्ज़मा पहुँचने के बाद जल्दी-से-जल्दी हरम में हाज़िर हो। फिर जब वह हरम में दाख़िल होता है और अल्लाह के घर पर उसकी नज़र पड़ती है तो उसके दिल पर एक हैबत तारी हो जाती है जो अल्लाह तआ़ला के जलाल का करिश्मा है, और उसका दिल बे-इख़्तियार ख़ाना-काबा की तरफ़ खिंचता है जो अज़मतवाले अल्लाह की मुहब्बत का फ़ितरी तक़ाज़ा है। इस मौक़े पर उसे दिल और ज़बान से 'अल्लाहु-अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वल्लाहु अक़बर' कहना चाहिए और पूरे शुऊर के साथ अल्लाह तआला से यह दुआ़ करनी चाहिए–

"अल्ला-हुम-म ज़िद् हाज़ल-बै-त तअ़ज़ीमंव-व-तशरीफ़ंव-व-तक्रीमंव-व महाबतंव-व-बिर्रा।"

(ख़ुदाया, इस घर को ज़्यादा-से-ज़्यादा अज़मत व शर्फ़ और बुज़ुर्गी और दबदबा अता फ़रमा और इसे ज़्यादा-से-ज़्यादा नेकियों का मरकज़ बना दे।)

"अल्लाहुम्-म अन्तस्सलामु, व मिनकस्सलामु फ़हय्यिना रब्बना बिस्सलाम।"

(ऐ ख़ुदा! तू हर ऐब व कमी से पाक है, और ऐबों व आफ़तों से सलामती जिसको भी नसीब होती है तेरी ही तरफ़ से नसीब होती है। इसलिए ऐ परवरदिगार! हमें जिस्म व रूह की सलामती के साथ जीने की तौफ़ीक़ अता फ़रमा।)

ज़रूरी नहीं है कि ये दुआएँ आप अरबी ज़बान ही में माँगे। अस्ल चीज़ इन शब्दों को ज़बान से अदा करना नहीं है, बल्कि उस मज़मून की दुआ अल्लाह से माँगना है जो इन जुमलों (वाक्यों) में बयान किया गया है। आप को अरबी शब्द याद करने और पढ़ने में दिक़्क़त हो तो आप इस मज़मून (विषय) की दुआ अपनी ज़बान में भी माँग सकते हैं।

तवाफ़

हरम पहुँचने के बाद हर हाजी को तवाफ़ करना होता है। अगर इहराम बाँधते वक़्त उसने 'तमत्तो' या 'क़िरान' की नीयत की हो तो वह उमरे का तवाफ़ करता है।[1] और अगर इफ़राद (यानी सिर्फ़ हज) की नीयत की हो तो तवाफ़े-क़ुदूम करता है। फिर यौमुन्नहर (क़ुरबानी के दिन) को उसे तवाफ़े-इफ़ाज़ा और मक्का छोड़ते वक़्त तवाफ़े-विदाअ भी करना होता है। और इन ज़रूरी तवाफ़ों के अलावा भी यह एक ऐसी नफ़्ल इबादत है जिसका मौक़ा बाहर से आनेवालों को सिर्फ़ मक्का में क़ियाम के वक़्त में ही नसीब हो सकता है, इसलिए इस मौक़े से जितना भी फ़ायदा उठाया जा सके, उठाना चाहिए।

यह तवाफ़ क्या है? यह इनसान के उस फ़ितरी जज़बे का इज़हार है कि जिस हस्ती को वह अपना दाता और मुहसिन समझता है और अपना माबूद मानता है। उसपर अपने आपको फ़िदा करे, उसके गिर्द घूमे और सदक़े और क़ुरबान हो। अल्लाह तआला की ज़ात ख़ुद इससे बालातर है कि हम उसे पा सकें और उसके गिर्द घूम सकें। उसने हमारे इस जज़बे की तस्कीन के लिए इस ख़ाना-काबा को अपना घर क़रार दिया है और हमें हिदायत की है कि मुझपर फ़िदा होने की जो ख़ाहिश तुम्हारे दिल में है उसे मेरे घर का तवाफ़ करके पूरा कर लो। इसलिए जब आप इस घर का तवाफ़ करें तो इश्क़ के जज़बे से सरशार होकर इस तरह तवाफ़ कीजिए जैसे एक आशिक़ अपने हक़ीक़ी महबूब के सदक़े हो रहा है।

हर तवाफ़ की शुरुआत हजरे-असवद के बोसे या इस्तिलाम (हाथ या मुँह से चूमने) से होती है। यह असल में एक पत्थर का बोसा नहीं है। बल्कि महबूब की ड्योढ़ी का बोसा है।

---

[1] तमत्तो यह है कि आदमी उमरा करके इहराम खोल ले और फिर हज का वक़्त आने पर नए सिरे से इहराम बाँधे। और क़िरान यह है कि आदमी एक ही इहराम में उमरा और हज दोनों करे।

इसी तरह तवाफ़ और मक़ामे-इबराहीम (अलैहि.) की दो रकअ़तों से फ़ारिग़ होने के बाद 'मुल्तज़म' से चिमटकर जो दुआएँ माँगी जाती हैं वे भी यही समझते हुए माँगनी चाहिएँ कि यह हमारे मालिक के घर की चौखट है। मालिक ख़ुद तो इससे बालातर है कि हम उसका दामन थाम सकें। हमारी नारसाई पर तरस खाकर उसने यह घर हमारे लिए बना दिया ताकि उसके दामन से लिपटकर अपनी आरज़ुएँ पेश करने की जो तमन्ना हमारे दिल में है उसे हम उसके घर की चौखट से लिपट कर पूरा कर लें।

तवाफ़ के बीच में पढ़ने के लिए जो लम्बी-चौड़ी दुआएँ कुछ लोगों ने लिखी हैं, उनका याद करना और पढ़ना कुछ ज़रूरी नहीं है। और यह तरीक़ा तो बिल्कुल ही फ़िज़ूल है कि मुअ़ल्लिम आगे-आगे दुआ पढ़ता जा रहा है और हाजियों की टोली की टोली उसकी ग़लत-सलत नक़ल उतारती जा रही है। तवाफ़ के लिए इन दुआओं को शरीअत ने हरगिज़ लाज़िम नहीं किया है, और न इस बेमानी तरीक़े से इनको अदा करने का कोई फ़ायदा है। बस यह काफ़ी है कि आप तवाफ़ शुरू करते वक़्त हजरे-असवद के सामने खड़े होकर नमाज़ की तरह हाथ उठाएँ और "बिस्मिल्लाहि अल्लाहु अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाहु व लिल्लाहिल-हम्द" कहकर तवाफ़ शुरू कर दें, फिर तावाफ़ के दौरान अल्लाह को याद करते चले जाएँ और उससे दुआ माँगते जाएँ। ज़िक्र के लिए "सुब्हानल्लाह, अलहम्दुलिल्लाह, ला इला-ह इल्लल्लाह और अल्लाहु अकबर" के शब्द काफ़ी हैं। किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं। दुआ जो कुछ भी आपके दिल से निकले और जिस ज़बान (भाषा) में भी आप माँग सकें, माँगते रहें।

हजरे-असवद का बोसा देने के लिए जो हुजूम और धका-पेल लोग करते हैं यह एक नापसन्दीदा काम है, बल्कि इसमें एक-दूसरे से जो सख़्त मुक़ाबला किया जाता है वह तो हज को ख़राब करनेवाली हरकत है। ख़ास तौर से औरतों का तो इस धका-पेल में घुसना तो बिल्कुल ही नाजाइज़ है। शरीअ़त ने आपपर लाज़िम नहीं किया है कि आप ज़रूर हजरे-असवद को बोसा ही दें। यह काम अगर किसी रुकावट के बग़ैर न हो सकता हो तो चक्कर के ख़ात्मे पर हजरे-असवद के सामने पहुँचकर उसकी तरफ़ हाथ से

इशारा करना और अपने हाथ ही को चूम लेना शरीअ़त के मुताबिक़ बिल्कुल काफ़ी है।

जिस तवाफ़ के बाद 'सई' (दौड़-धूप) करनी हो उसमें 'इज़्तिबाअ़' और 'रमल' भी किया जाता है। 'इज़्तिबाअ़' यह है कि इहराम की चादर को सीधे हाथ के नीचे से निकालकर बाएँ कन्धे पर डाल लिया जाए और दायाँ कन्धा खुला रखा जाए। 'रमल' यह कि पहले तीन तवाफ़ कन्धे हिला-हिलाकर छोटे-छोटे क़दम डालते हुए ज़रा तेज़ी के साथ किए जाएँ। यह अस्ल में उस वाक़िए की यादगार है कि सुलह- हुदैबिया की क़रारदाद के मुताबिक़ जब नबी (सल्ल॰) अपने सहाबा (रज़ि॰) के साथ उमरा करने के लिए मक्का मुअ़ज़्ज़मा तशरीफ़ लाए थे तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि मदीना की आबो-हवा ने मुसलमानों को कमज़ोर कर दिया है। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को हुक्म दिया था कि पहले तीन तवाफ़ों में इज़्तिबाअ़ और रमल करें, ताकि हक़ के दुश्मनों के सामने अह्ले-इस्लाम (मुसलमानों) की ताक़त का मुज़ाहरा हो। इसी यादगार को आज तक बाक़ी रखा गया है। इससे हमें यह सबक़ मिलता है कि बन्दे का अकड़कर चलना वैसे तो अल्लाह तआ़ला को सख़्त नापसन्द है, मगर जब उसके दुश्मनों के सामने इस्लाम की ताक़त का मुज़ाहरा करने के लिए यह चाल अपनाई जाए तो फिर यही चाल अल्लाह को महबूब हो जाती है।

मक़ामे-इबराहीम (अलैहि॰)

तवाफ़ से फ़ारिग़ होने के बाद आप मक़ामे-इबराहीम (अलैहि॰) पर पहुँचते हैं और वहाँ दो रक़अत नमाज़ अदा करते हैं। इस मक़ाम पर जो पत्थर रखा है यह वही पत्थर है जिसपर खड़े होकर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने ख़ाना-काबा की दीवारें उठाई थीं, फिर उसी पर खड़े होकर उन्होंने अल्लाह तआ़ला के हुक्म से उस वीरान और सुनसान मक़ाम पर ख़ुदा के तमाम बन्दों को हज के लिए पुकारा था, और उसी पुकार के जवाब में आज आप 'लब्बैक-लब्बैक' कहते हुए यहाँ आए हैं। फिर यह पत्थर ख़ाना-काबा की दीवार से मिलकर रखा हुआ था। बाद में इसे मौजूदा मक़ाम

पर रख दिया गया। इस मक़ाम के बारे में अल्लाह तआला का हुक्म है कि इसे नमाज़ की जगह बना लो। काबा का तवाफ़ करने के बाद ये दो रकअतें ख़ुदा के इसी हुक्म की तामील में पढ़ी जाती हैं।

इस सिलसिले में यह बात आपके इल्म में रहनी चाहिए कि तमाम दुनिया के लिए क़िबला (केन्द्र) मस्जिदे-हराम है और मस्जिदे-हराम में नमाज़ पढ़नेवाले के लिए क़िबला ख़ाना-काबा है, और मस्जिदे-हराम की जमाअत के साथ नमाज़ के लिए इमाम का क़िबला वह मक़ाम है जहाँ से हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने दुनिया को हज के लिए पुकारा था। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ख़ुद भी इसी मक़ाम पर खड़े होकर काबा की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ते थे, और आज भी हरम की जमाअत के साथ नमाज़ का इमाम उसी जगह खड़ा होता है।

सफ़ा-मरवा के बीच सई (चक्कर लगाना)

मक़ामे-इबराहीम (अलैहि॰) पर दो रकअत नमाज़ अदा करने और 'मुल्तज़म' पर दुआ करने के बाद आप 'ज़मज़म' पर आते हैं और इसका पानी पीते हैं। फिर उमरा पूरा करने के लिए सफ़ा और मरवा के बीच सात बार सई करते हैं। ये सब काम आप ग़फ़लत और बे-ख़बरी के साथ न करें, बल्कि अपने दिल में सोचें कि यह ज़मज़म क्या जगह है जहाँ आप खड़े हैं, यह पानी कैसा है जिसे आप पी रहे हैं, यह सफ़ा कैसी पहाड़ी है जिससे आप सई की शुरुआत करते हैं, और ये सात चक्कर कैसे हैं जो आप 'सफ़ा' और 'मरवा' के बीच लगाते हैं।

हज़रात! इनमें से हर मक़ाम अपना एक इतिहास रखता है और इस इतिहास (तारीख़) के अन्दर एक सीख है। आज जहाँ अल्लाह का घर, ज़मज़म और मक़ामे-इबराहीम (अलैहि॰) है, हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपनी बीवी हज़रत हाजरा और अपने दूध पीते बच्चे हज़रत इसमाईल को सिर्फ़ एक मशकीज़ा पानी और एक थैला खजूरों का देकर बिलकुल अकेला छोड़ गए थे। यहाँ कहीं पानी न था; कोई खाने का सामान न था; दूर-दूर तक कोई बस्ती न थी, और ज़ाहिरी तौर पर ये दोनों माँ-बच्चे इस सुनसान

वादी में बिलकुल ही बेसहारा थे। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) जब उन्हें छोड़कर वापस जाने लगे तो हज़रत हाजरा (रज़ि॰) उनके पीछे चलीं। बार-बार पूछती थीं कि आप हमें कहाँ छोड़े जा रहे हैं, मगर वे ख़ामोश चले जा रहे थे। आख़िर हज़रत हाजरा (रज़ि॰) ने पूछा, "क्या यह काम आप अल्लाह के हुक्म से कर रहे हैं?" उन्होंने फ़रमाया, "हाँ।" इसपर हज़रत हाजरा (रज़ि॰) ने कहा, अगर यह बात है तो अल्लाह यक़ीनन हमें बरबाद नहीं होने देगा। फिर वह पूरे इत्मीनान से साथ अल्लाह के भरोसे पर अपने बच्चे के पास आकर बैठ गईं। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) जब इस वादी से निकलने लगे तो पलटकर उन्होंने वादी की तरफ़ रुख़ किया और अल्लाह से दुआ माँगी —

> "ऐ परवरदिगार! मैंने अपनी नस्ल का एक हिस्सा एक सुनसान रेगिस्तानी वादी में तेरे मुहतरम घर के क़रीब ला बसाया है। ऐ परवरदिगार! यह मैंने इसलिए किया है कि यहाँ नमाज़ क़ायम करें। तो तू ऐसा कर कि लोगों के दिल इनकी तरफ़ खिंचें और इनको फलों से रोज़ी दे, ताकि ये शुक्रगुज़ार हों।" (क़ुरआन; 14 : 37)

देखिए, अल्लाह तआला के हुक्म को मानने और उस पर राज़ी होने और अल्लाह पर भरोसा रखने की क्या शान थी उस शौहर और बाप की जिसने सारे आलम के रब का इशारा पाते ही अपनी बीवी और बच्चे को ठण्डे दिल से इस सुनसान रेगिस्तानी वादी में लाकर छोड़ दिया। और किस दरजे का यक़ीन व भरोसा अपने ख़ुदा पर था उस ख़ातून (औरत) को जो यह मालूम हो जाने के बाद बिल्कुल मुतमइन हो गई कि उसे और उसके नन्हे बच्चे को अल्लाह के हुक्म से यहाँ अकेला छोड़ा जा रहा है।

जब पानी और खजूरों का ज़ख़ीरा (स्टॉक) ख़त्म हो गया और दोनों माँ-बच्चे भूख-प्यास से तड़पने लगे तो हज़रत हाजरा (रज़ि॰) उस ज़मज़म की जगह पर बच्चे को लिटाकर 'सफ़ा' की पहाड़ी पर पहुँचीं ताकि चारों तरफ़ नज़र दौड़ाकर देखें कि कहीं कोई मदद करनेवाला है? फिर 'सफ़ा' से उतरकर 'मरवा' की तरफ़ दौड़ीं और उसपर चढ़कर फिर उन्होंने चारों तरफ़ देखा कि शायद कोई मदद करनेवाला नज़र आए। इस तरह इन दोनों

पहाड़ियों के बीच वे लगातार सात बार दौड़ीं। आख़िरी बार जब वे मरवा पर थीं तो उन्होंने एक आवाज़ सुनी। यक़ीन न आया कि यह सच में किसी की आवाज़ है। फिर कान लगाकर सुना तो वही आवाज़ आई। ज़मज़म की तरफ़ देखा, जहाँ बच्चे को लिटाकर गई थीं तो एक आदमी नज़र आया जो असल में अल्लाह का फ़रिश्ता था। उसने ज़मीन पर पाँव मारा और यकायक एक चश्मा (पानी की धारा) निकल आया। फिर उसने हज़रत हाजरा (रज़ि॰) से कहा : इत्मीनान रखो, अल्लाह तआला तुम्हें बरबाद करनेवाला नहीं है। यहाँ अल्लाह का घर बननेवाला है जिसे तुम्हारा यह लड़का और इसका बाप बनाएँगे।

हज़रात! इसी वाक़िए कि यादगार में यह सफ़ा-मरवा के बीच सई (चक्कर लगाना) है जो आज उमरे और हज में की जाती है। हज़रत हाजरा (रज़ि॰) ने 'सफ़ा' से सई की शुरुआत की थी, इसलिए हमारी सई भी उसी से शुरू होती है। उन्होंने सात चक्कर लगाए थे, इसलिए हम भी सात चक्कर लगाते हैं। उन्होंने सई के बाद आकर पानी पिया था, क्योंकि उससे पहले यहाँ पानी मौजूद न था। हम सई से पहले अल्लाह तआला के मोजज़े (चमत्कार) से पैदा होनेवाला यह पानी पीते हैं, क्योंकि अब वह मौजूद है। ये सारे काम जो हज़रत हाजरा (रज़ि॰) के उस अमल की नक़ल के तौर पर किए जाते हैं, इनकी असल रूह यह है कि हम अपने अन्दर वही फ़रमाँबरदारी और ख़ुदा के हर फ़ैसले से राज़ी होना, वही अल्लाह पर भरोसा, और वही यक़ीन व एतिमाद पैदा करने की कोशिश करें जिसका हैरतअंगेज़ मुज़ाहिरा (प्रदर्शन) हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत हाजरा (रज़ि॰) ने किया था। हमें जब यह मालूम हो जाए कि किसी काम का हुक्म अल्लाह तआला की तरफ़ से है तो फिर कोई ख़तरा, कोई अन्देशा हमें उसके बजा लाने से बाज़ न रख सके। हम पूरे यक़ीन के साथ इस भरोसे पर छलाँग लगा दें कि जिस ख़ुदा ने इस ज़ाहिरी ख़तरे में कूद जाने का हमें हुक्म दिया है वह हमें बरबाद करनेवाला नहीं है। हमारी भलाई उसी काम में है जिसका उसने हुक्म दिया है। यह सबक़ जिसने भी यहाँ से हासिल कर लिया वह

आबे-ज़मज़म (पानी) पीने और 'सफ़ा-मरवा' के बीच दौड़ने के सारे रूहानी फ़ायदे लूट ले गया।

यह बात भी जान लीजिए कि इन मनासिक (हज्ज के अरकान) को अदा करते हुए भी अल्लाह का ज़िक्र और उससे दुआ का सिलसिला बराबर जारी रहना चाहिए। आप ज़मज़म का पानी पिएँ तो अल्लाह से दुआ करें कि –

अल्लाहुम्-म इन्नी असूअलु-क रिज़क़वं-वासिअना, व इल्मन-नाफ़िआ व शिफ़ाअमूमिन कुल्लि दाइन।

(ख़ुदाया, मैं तुझसे रोज़ी में कुशादगी, फ़ायदा पहुँचानेवाला इल्म, और हर बीमारी से शिफ़ा माँगता हूँ।)

'सफ़ा' पहाड़ी पर चढ़ें तो काबा की तरफ़ रुख़ करके कहें –

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर व लिल्लाहिल हम्द, अल्लाहु अकबर अला मा हदाना, वलहम्दु लिल्लाहि अला मा अव्लाना, ला इला-ह इल्लल्लाहु वहदहू ला शरी-क लहू, लहुल्मुल्कु व लहुलहम्द, युह्यी व युमीत, बि-यदिहिल ख़ैर-व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर। ला इला-ह इल्लल्लाहु वहदहू ला शरी-क लहू, अन्ज-ज़ व अदहू व न-स-र अब्दहु व ह-ज़-मल अहज़ा-ब वहदहू, ला इला-ह इल्लल्लाहु व-ला नअबुदू इल्ला इय्याहु, मुख़लिसी-न लहुद्दी-न व लौ करिहल-काफ़िरून।

"अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है और उसी के लिए सारी तारीफ़ है। हम अल्लाह की बड़ाई करते हैं, इस शुक्र में कि उसने हमें हिदायत दी, और उसकी तारीफ़ करते हैं उन एहसानों पर जो उसने हमपर किए हैं। सिर्फ़ एक अल्लाह, जिसका कोई साझी नहीं, के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं, उसी की बादशाही है और उसी के लिए हम्द (प्रशंसा) है, वही जिलाता और मारता है, उसी के इख़्तियार में भलाई है और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। कोई माबूद एक अकेले अल्लाह के सिवा नहीं है, कोई उसका शरीक नहीं। उसने अपना वादा पूरा किया, अपने बन्दे

(मुहम्मद सल्ल॰) की मदद की और सारे जत्थों को उसी अकेले ने शिकस्त दे दी। कोई माबूद अल्लाह के सिवा नहीं, हम उसी की बन्दगी करते हैं अपने दीन को उसके लिए ख़ालिस करके, चाहे इस्लाम के मुख़ालिफ़ों को यह कितना ही नागवार हो।"

यही कुछ आप 'मरवा' पर भी कहें, और 'सफ़ा-मरवा' के बीच चलते हुए यह दुआ करते जाएँ —

"रब्बिग़्फ़िर वर्‌हम व तजावज़ अम्मा तअ्‌लम, इन्न-क अन्‌तल अअ्‌ज़्ज़ुल-अकरम।"

(ऐ पालनहार! बख़्श दे और रहम कर, हमारे उन सारे क़ुसूरों से दरगुज़र फ़रमा जो तेरे इल्म में हैं, तू सबपर ग़ालिब और बड़ा करीम है।)

हज

आठवीं ज़िलहिज्जा की सुबह को तमाम हाजी मक्का मुअज्जमा से हज के लिए निकलते हैं, और जिन लोगों ने तमत्तोअ करते हुए उमरे के बाद इहराम खोल लिया था वे भी नए सिरे से इहराम बाँध लेते हैं। अब असल हज शुरू होता है। ये लाखों इहराम-बन्द हाजी एक ही वक़्त में मक्का से चलकर लब्बैक-लब्बैक कहते हुए आठ ज़िलहिज्जा को मिना जा उतरते हैं। फिर यही बड़ा मजमा (जनसमूह) 9 ज़िलहिज्जा की सुबह को एक ही वक़्त में लब्बैक-लब्बैक कहता हुआ चलता है और हरम की हदों (सीमाओं) से बाहर जाकर अरफ़ात के मैदान में पड़ाव डाल देता है। फिर उसी दिन शाम को यह पूरा मजमा उठता है और लब्बैक-लब्बैक पुकारता हुआ मुज़दल्फ़ा में जा उतरता है। फिर दस ज़िलहिज्जा को सूरज निकलने से पहले-पहले हाजियों का यह सैलाब लब्बैक कहता हुआ उठता है और मिना वापस पहुँच जाता है। फिर ये सब लोग लब्बैक कहते हुए 'जमर-ए-उक़बा (पहले जमरा) की तरफ़ चलते हैं और उस पर सात कंकरियाँ मारते हैं। फिर ये लोग मिना ही में क़ुरबानी करते हैं। फिर सब सिर के बाल मुंडवाते या कटवाते हैं। फिर गरोह के ग़रोह मक्का पहुँचकर तवाफ़ और सई करते हैं। फिर मिना

वापिस होकर दो दिन या तीन दिन ठहरते हैं और उन दिनों में हर दिन तीनों जमरों पर 'रमी' करते हैं। यही सारे अमल हैं जिनका नाम हज है।

जो लोग इबादत के मानी और हज की हक़ीक़त को नहीं समझते वे हैरान होकर सोचने लगते हैं कि आख़िर ये कैसी दौड़-धूप है जिसके लिए दुनिया-भर से खींचकर लाखों आदमियों को बुलाया जाता है? और यह क्या इबादत हुई कि मक्का से उठे और मिना पहुँच गए; वहाँ से उठे और अरफ़ात जा ठहरे; फिर यह चले और मुज़दल्फ़ा में रात गुज़ार दी, फिर मिना पहुँचे और वहाँ एक पत्थर को कंकरियाँ मार दीं? लेकिन आप ज़रा समझने की कोशिश करें तो आपपर यह हक़ीक़त खुल जाएगी कि इस सारी दौड़-धूप में ज़ो ज़हमत आदमी को पेश आती है, जो तकलीफ़ें उसको उठानी पड़ती हैं, जिस मशक़्क़त और बे-आरामी से उसको सामना करना पड़ता है, जिस तरह वह एक जगह से दूसरी जगह बे-ठिकाने होता चला जाता है, अल्लाह की राह में यही सब कुछ सहन करना ही तो असूल इबादत है। उमरे में तवाफ़ और सई के सिवा और कुछ नहीं होता, क्योंकि वह अकेले-अकेले किया जाता है। एक आदमी के लिए एक दिन अरफ़ात में जा ठहरना, एक रात मुज़दल्फ़ा में गुज़ार देना और दो-चार दिन मिना में ठहर जाना कोई मुश्किल काम नहीं है। इसी लिए उमरा करनेवाले को इन कामों में से कोई काम भी करने का हुक्म नहीं दिया गया। लेकिन हज में लाखों आदमियों को एक ही वक़्त में यह दौड़-धूप करनी होती है जिससे कोई बड़े-से-बड़ा दौलतमन्द आदमी भी तकलीफ़ें उठाए और आराम व राहतों से महरूम हुए बिना नहीं रह सकता। यही वजह है कि हज की इजतिमाई (सामूहिक) इबादत में तवाफ़ व सई से ज़ाइद ये मनासिक रखे गए हैं। इससे मक़सूद हर मोमिन बन्दे में यह कैफ़ियत पैदा करना है कि वह अल्लाह को राज़ी करने के लिए हर आराम को छोड़ने और उसकी राह में हर कठिनाई का सामना करने के लिए तैयार हो जाए। यही अल्लाह पर ईमान लाने का तक़ाज़ा है। यही बन्दगी के मानी हैं और यही इस इबादत की रूह है। इस इबादत के दौरान में जो आदमी इन सारी तकलीफ़ों को पूरे इत्मीनान और क़ल्ब व रूह की पूरी ख़ुशी के साथ क़बूल करता है, और

अपने साथ के हाजियों के साथ कोई झगड़ा नहीं करता, बल्कि सख़्त कशमकश के मौक़े पर भी सब्र व ज़ब्त से काम लेता है और ख़ुद तकलीफ़ उठाकर दूसरों को आराम पहुँचाता है, वह हज का सवाब लूट लेता है, और इसके ख़िलाफ़ जो आदमी हर बे-आरामी पर त्योरी चढ़ाता है, हर कठिनाई पर रंजीदा दिल होता है, और साथ के हाजियों से अपने आराम की ख़ातिर कशमकश करता और लड़ता-झगड़ता है वह हज के सवाब को बरबाद कर देता है। उस बेचारे के हिस्से में ख़ालिस मशक़्क़त ही रह जाती है। अज्र और सवाब हवा में उड़ जाता है।

यह बात भी याद रखिए कि हज के इन अरकान को अदा करते वक़्त आप चाहे कुछ भी न पढ़ें और वक़्त पर नमाज़ अदा कर देने के सिवा कोई दूसरा अमल न करें, तब भी हज पूरा हो जाएगा और बजाय ख़ुद हज का जो सवाब है वह आपको मिल जाएगा। मगर बदक़िस्मत है वह आदमी जिसे अल्लाह से क़ुरबत (निकटता) हासिल करने का यह अच्छा मौक़ा मिला हो और वह ज़्यादा से ज़्यादा क़ुर्ब (निकटता) हासिल करने की कोशिश न करे। मक्का से निकलने के बाद क़ुरबानी के दिन (यौमुन्नहर) की पहली रमी तक सबसे अच्छा ज़िक्र यह है कि आदमी ज़्यादा-से-ज़्यादा लब्बैक-लब्बैक करे और इस शऊर के साथ करे कि मेरा आक़ा मुझे अब 'मिना' बुला रहा है तो मैं हाज़िर हूँ, अब 'अरफ़ात' बुला रहा है तो इसके लिए भी हाज़िर हूँ, अब 'मुज़दल्फ़ा' बुला रहा है तो इसके लिए भी हाज़िर हूँ और अब 'रमी' के लिए 'मिना' तलब कर रहा है तो इसके लिए भी हाज़िर। हर बार लब्बैक कहते हुए आप महसूस करें कि परवरदिगार की तरफ़ से आप को बुलाया जा रहा है और आप उसके जवाब में कह रहे हैं, मैं हाज़िर हूँ। इस एहसास के साथ जब आप बार-बार लब्बैक कहेंगे तो इंशाअल्लाह आपके दिल में ज़ौक-शौक़ की वह कैफ़ियत पैदा होगी और रूह उसके अन्दर वह लज़्ज़त पाएगी जिसके मुक़ाबले में हर लज़्ज़त हेच हो जाएगी।

तलबिया (लब्बैक-लब्बैक) के अलावा बीच-बीच में ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्लाह की हम्द (तारीफ़) और बड़ाई और 'ला इला-ह इल्लल्लाह' कहते जाइए। ज़्यादा-से-ज़्यादा नबी (सल्ल॰) पर दुरूद व सलाम भेजिए। कसरत से

अपने हक़ में, अपने माँ-बाप के हक़ में और सभी ईमान वाले मर्दों और औरतों के हक़ में मग़फ़िरत की दुआएँ कीजिए और ख़ास तौर पर अरफ़ात में ठहरने के आख़िर वक़्त में और मुज़दल्फ़ा में ठहरने की रात में तो इतना ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त अल्लाह के ज़िक्र, दुआ और इस्तिग़फ़ार में लगा दीजिए। फिर तशरीक़ के दिनों में मिना में ठहरने का ज़माना बेकार कामों में न बरबाद कीजिए, बल्कि उसे ख़ैर और भलाई की तब्लीग़ में, दुनिया भर से आए हुए मुसलमानों के साथ मेल-जोल बढ़ाने और ताल्लुक़ पैदा करने में और अल्लाह के कलिमा को बुलन्द करने की फ़िक्र और कोशिश में लगा दीजिए, ताकि हज के रूहानी और अख़लाक़ी फ़ायदों का कोई पहलू आपसे छूटने न पाए।

ये हैं हज के मानी और यह है उसके करने का सही तरीक़ा। मेरी दुआ है कि अल्लाह मुझे और आप सबको यह फ़रीज़ा ठीक-ठीक उसकी असली रूह के साथ अदा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।

"व आख़िरु-दावा ना अनिल-हम्दुलिल्लाहि रब्बिल-आलमीन।"

तीसरा ख़ुतबा

अल्लाह की हम्द व सना (तारीफ़) के बाद

बिरादराने-इस्लाम! अल्लाह तआला ने हमपर कोई इबादत ऐसी फ़र्ज़ नहीं फ़रमाई है जिसमें बेशुमार रूहानी, अख़लाक़ी, इज्तिमाई (सामूहिक), तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और माद्दी (आर्थिक) फ़ायदे न हों। ज़ाहिर बात है कि अल्लाह तआला को अपनी ज़ात के लिए तो किसी की इबादत की कोई हाजत नहीं है। उसने जो इबादत भी बन्दों पर फ़र्ज़ की है वह ख़ुद बन्दों की भलाई के लिए है। अल्लाह की ज़ात हर ज़रूरत से बालातर और हर नफ़ा और फ़ायदे की ज़रूरत से बुलन्दतर है। लेकिन जितनी इबादतें भी उसने फ़र्ज़ की हैं उनका एक तो मक़सद असली है जिसके लिए वे फ़र्ज़ की गई हैं और इसके अलावा और भी बहुत-से फ़ायदे हैं जो उन इबादतों को अंजाम देने से आप-से-आप हासिल होते हैं। अब अगर कोई आदमी नादानियों से इन ज़िम्नी फ़ायदों को ही असल मक़सद क़रार दे बैठे और उस असल मक़सद को भुला बैठे जिसके लिए वे इबादतें फ़र्ज़ की गई हैं तो हक़ीक़त में वह अपनी इबादतों को बरबाद करता है। उसकी इबादत सिरे से इबादत ही नहीं रहती। मिसाल के तौर पर आप देखिए कि रोज़े के बेशुमार अख़लाक़ी, रूहानी और जिस्मानी फ़ायदे हैं लेकिन अगर कोई आदमी रोज़ा इसलिए रखे कि उसकी सेहत अच्छी हो जाएगी तो हक़ीक़त में वह कोई इबादत नहीं करता। वह तो बस एक फ़ाक़ा करता है कि जो सेहत ठीक करने के लिए किसी डॉक्टर के मशविरे से या ख़ुद अपनी राय से उसने करना शुरू कर दिया है। इसी तरह अगर कोई आदमी नमाज़ पढ़ता है और इसमें उसके सामने वह बात होती है कि उसकी आदत में बाक़ायदगी पैदा हो जाएगी, उसके औक़ात (वक़्तों) में नज़्म-ज़ब्त पैदा हो जाएगा, या इसी तरह का कोई और फ़ायदा उसकी निगाह में है, तो हक़ीक़त में वह कोई इबादत नहीं करता, जिस फ़ायदे को उसने नज़र में रखा है वह चाहे उसको

हासिल हो भी जाए लेकिन इबादत का कोई अज्र या सवाब उसको नहीं पहुँचता। ऐसा ही मामला हज का भी है। हज के जो अख़्लाक़ी, रूहानी, इज्तिमाई, तमद्दुनी और माद्दी फ़ायदे हैं, अगर कोई आदमी इनमें से किसी फ़ायदे को भी अपना मक़सूद क़रार देता है तो हक़ीक़त में वह कोई हज करता ही नहीं है। उसकी यह इबादत सिरे से इबादत ही नहीं है; क्योंकि तमाम इबादतों का असूली मक़सद तो अल्लाह तआला के हुज़ूर में अपनी बन्दगी पेश करना है, उसकी ख़ुशी हासिल करने की कोशिश करना है, अगर बन्दे को अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल हो जाए तो उसकी इबादत का असूल मक़सद पूरा हो गया। लेकिन अगर वह इबादत में अपनी सारी दौड़-धूप के बावजूद अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) पाने से महरूम रह गया तो हक़ीक़त में उसकी सारी मेहनत ही अकारत गई। उसने इबादत के असूली मक़सद और हक़ीक़ी फ़ायदे को बरबाद कर दिया। इसलिए याद रखिए कि इबादत से ज़िम्नी फ़ायदे का हासिल होना या न होना बजाए ख़ुद मक़सूब नहीं है। आप यहाँ हज के लिए आए हैं तो आपका सबसे पहला काम यह है कि आपमें से हर आदमी हज अपनी नीयत को ख़ालिस और पाक करके सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा को मक़सूद समझते हुए अंजाम दे। अगर किसी आदमी ने नीयत के इख़्लास और इरादे की दुरुस्ती के साथ हज किया और अगर कुछ और नहीं वह सिर्फ़ अपनी मग़फ़िरत हासिल करके ले गया, तब भी वह हक़ीक़त में कामयाब है। इसके आगे यह सरासर अल्लाह का फ़ज़्ल और एहसान है कि वह किसी आदमी को इसपर और ज़्यादा अज्र और ऊँचे मरतबों से नवाज़े, लेकिन एक आदमी का हज के ज़रीए से अल्लाह की रिज़ा और ख़ुशनूदी को हासिल कर लेना ही बहुत बड़ी कामयाबी है। इसलिए मैं आपको सबसे पहली नसीहत यह करता हूँ कि अपने ज़ेहन को हर तरह की बेकार सोचों और ग़ैर-हक़ीक़ी ख़यालों से साफ़ कर लीजिए और हज के असूली मक़सूद को दिल में बिठाने की कोशिश कीजिए।

आजकल हज के बारे में नए-नए फ़लसफ़े (दर्शन) पेश किए जा रहे हैं। कुछ लोगों के ख़याल में हज इसलिए फ़र्ज़ किया गया है कि इससे

असल में मुसलमानों की एक बैनुल-अक़वामी सालाना कान्फ्रेंस (अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक सम्मेलन) कराना मक़सूद है। इसमें कोई शक नहीं कि सालाना कान्फ्रेंस के जो कुछ फ़ायदे भी कोई आदमी अपने दिमाग़ में सोच सकता है उससे हज़ार गुना ज़्यादा फ़ायदे हज से अमलन हासिल होते हैं, लेकिन ऐसी कोई कान्फ्रेंस असल में हज का हक़ीक़ी मक़सद नहीं है। इसी तरह अगर कोई आदमी यह समझता है कि हज करने का फ़ायदा यह है कि आदमी को अरब की सयाहत (पर्यटन) करने का, उसके तारीख़ी मक़ामात (ऐतिहासिक स्थानों) को देखने का और उसकी तहज़ीबी और तमद्दुनी ज़िन्दगी का मुताला करने का मौक़ा मिलता है तो हक़ीक़त में वह अपने हज को बरबाद करता है। अगर उसके दिल में हज के मक़सद की हैसियत से ऐसी कोई ग़रज़ और इरादा शामिल हो जाए तो हक़ीक़त में उसकी यह इबादत सिरे से इबादत ही नहीं रहेगी। इसलिए अपनी नीयत को ख़ालिस अल्लाह ही की इबादत के लिए मख़सूस कीजिए और अपने ज़ेहन में इस ख़याल को बिठाइए कि हमारा असल मक़सद अल्लाह की रिज़ा (ख़ुशी) हासिल करना और उसके हुज़ूर अपनी इबादत के जज़बे को पेश करना है।

इसके साथ जो दूसरी बात मैं आपके ज़ेहन में बिठाना चाहता हूँ वह यह है कि अल्लाह के हुज़ूर बन्दगी पेश करने की दुनिया में जितनी शक्लें भी मुमकिन हैं वे सारी की सारी अल्लाह तआला ने हज में जमा कर दी हैं। ज़रा सोचिए कि एक आदमी जिस वक़्त हज का इरादा करता है, अगर वह सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) चाहने के लिए हज का इरादा कर रहा है तो उसका सफ़र का यह इरादा करना अपने आप में यह मानी रखता है कि वह कोई दुनियवी मक़सद लेकर घर से नहीं निकल रहा है। उसकी नज़र के सामने कोई तिजारती गरज़ नहीं है और न उसे सैर-सपाटे ही का शौक़ चर्राया है। उसने हज़ारों किलोमीटर का सफ़र करने का इरादा सिर्फ़ इस लिए किया है कि अल्लाह की इबादत करे और उसकी ख़ुशी पाने के लिए भाग-दौड़ करे। फिर आप देखिए कि एक आदमी जब हज के लिए निकलता है तो अपने बाल-बच्चों को छोड़ देता है। अपना घरबार, अपना कारोबार, अपने रिश्ते-नातेदार और अपने दोस्त, मिलने-जुलनेवाले, ग़र्ज़ यह

कि बेशुमार सम्बन्धों और रवाबित को तोड़कर निकलता है। क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि अल्लाह की इबादत करे और उसकी ख़ुशनूदी तलाश करे। इस तरह हिजरत का अज्र व सवाब उसको आप-से-आप मिल जाता है, हिजरत के जो अख़लाक़ी और रूहानी फ़ायदे और मुनाफ़े हैं वे सारे के सारे उसको हासिल हो जाते हैं, क्योंकि उसकी हैसियत उस शख़्स की सी है जो सिर्फ़ अल्लाह की ख़ातिर अपना घरबार छोड़ देता है।

इसके बाद आप देखिए कि एक आदमी जब मक्का मुअ़ज़्ज़मा पहुँचता है तो उस जगह वह बेशुमार मुख़्तलिफ़ इबादतों को अंजाम देता है। पाँचों वक़्तों की नमाज़ें तो बहरहाल वह आप से आप पढ़ता है, लेकिन इसके अलावा वह अल्लाह के घर का तवाफ़ करता है। इससे उसे अल्लाह तआला पर क़ुरबान होने और अपने आपको सदक़ा करने का अज्र नसीब होता है। यहाँ वह 'हजरे-असवद' को चूमता है, उसी तरह मानो अल्लाह तआ़ला की ड्योढ़ी को चूमता है। फिर वह 'मुल्तज़म' से चिमटता है, यह मानो अल्लाह तआ़ला की चौखट से चिमट रहा है और उससे दुआ़एँ माँग रहा है। इसके अलावा वह सफ़ा-मरवा के बीच सई करता है। इस तरह उसको अल्लाह की राह में दौड़-धूप करने का अज्र (प्रतिफल) मिलता है, इस तरीक़े से उसको अल्लाह से दुआ़ करने, उसके घर के गिर्द तवाफ़ करने और उसकी राह में भाग-दौड़ और जी-तोड़ मेहनत करने का अज्र हासिल होता है। फिर इन इबादतों के अलावा हज के दौरान में वह 'मिना' जाता है, मिना से 'अरफ़ात' और अरफ़ात से 'मुज़दल्फ़ा' आता है। मुज़दल्फ़ा से फिर मिना जाता है। यह सारी दौड़-धूप जिहाद से मुशाबहतर (समरूपता) रखती है। जिस तरह एक आदमी ज़िहाद के लिए घर से सब कुछ छोड़-छाड़कर निकलता है। रास्ते की तकलीफ़ें, कठिनाइयाँ और दुख सहन करता है। जंग के मैदान की सख़्तियाँ झेलता है। क़रीब-क़रीब इसी तरह की कठिनाइयाँ, मेहनतें और मशक़्क़तें आदमी को इस तमाम दौड़-धूप में सहन करनी होती हैं। इस तरीक़े से वह मानो अल्लाह के रास्ते में जिहाद के अज्र का हक़दार बनता है। फिर वह 'यौमुन्नहर' (क़ुरबानी के दिन) क़ुरबानी करता है। इस तरह उसको क़ुरबानी का अज्र भी हासिल होता है। इसी वजह से कहा गया

है कि हज जामेअ इबादत (सभी इबादतों को अपने अन्दर समेटे हुए) है। दुनिया में आज तक जितनी मुमकिन क़िस्म की इबादतें इनसानों ने किसी माबूद (उपास्य) को पेश की हैं वे सारी की सारी यहाँ एक मोमिन बन्दा सिर्फ़ अल्लाह तआला के लिए ख़ास करते हुए अंजाम देता है। इस बिना पर हज को सबसे बड़ी इबादत भी क़रार दिया गया है, और यही वजह है कि अगर यह इबादत अंजाम देकर कोई आदमी अपने गुनाहों की मग़फ़िरत (माफ़ी) ही हासिल कर ले तो हक़ीक़त में यह उसकी बहुत बड़ी कामयाबी है और माफ़ी की हद तक हज का फ़ायदा हासिल करने के लिए यह बात निहायत ज़रूरी है कि आप बेऐब हज करें। बेऐब हज से मुराद यह है कि आदमी हज के दौरान में हर तरह की बुराइयों से बचने की पूरी-पूरी कोशिश करे। चुग़ली से परहेज़ करे, गाली देने से और आपस में झगड़ा करने से बचे। आदमी को हज में जो सबसे बड़ी मशक़्क़त पेश आती है वह यह है कि उसे हज के अरकान की अदायगी में क़दम-क़दम पर रुकावटों और मुश्किलों का सामना करना पड़ता है; क्योंकि एक ही वक़्त में लाखों को हज के अरकान पूरे करने होते हैं। अब चूँकि इस मौक़े पर लोगों का ग़ैर-मामूली हुजूम (भीड़) होता है और हर कोई एक भाग-दौड़ में लगा होता है, इसलिए इस आलम में हर वक़्त इस बात का इमकान होता है कि एक इनसान को दूसरे इनसान से जाने-अनजाने कोई तकलीफ़ पहुँच जाए, या किसी को अपना कोई काम अंजाम देने में कठिनाई पेश आए। इसलिए ऐसे मौक़े पर हर आदमी को निहायत ज़ब्त और नरमी से काम लेना चाहिए और किसी सूरत में भी तंगदिली और तुनक-मिज़ाजी का मुज़ाहिरा नहीं करना चाहिए। उस आलम में इस बात की सख़्त ज़रूरत होती है कि आदमी अपने नफ़्स (मन) पर ज़ब्त (कंट्रोल) करे। आपस में गाली-गलौज और दंगा-फ़साद से पूरी तरह बचे और इस बात की पूरी कोशिश करे कि उसकी ज़ात से किसी को कोई तकलीफ़ न पहुँचे। अलबत्ता किसी की ज़ात से उसको कोई तकलीफ़ पहुँच जाए तो वह उसको सब्र के साथ सहन करे। यह कम से कम वह चीज़ है जो आदमी के हज को ऐब से बचाती है। इसलिए अल्लाह ने फ़रमाया है —

"जो आदमी हज के महीनों में हज की नीयत करे तो उसे ख़बरदार रहना चाहिए कि हज के दौरान में उससे कोई शहवानी काम (काम-वासना), कोई बदकारी, कोई लड़ाई-झगड़े की बात न होने पाए।" (क़ुरआन, 2 : 197)

हज के दौरान में आदमी का सबसे बड़ा इम्तिहान इसी मामले में होता है, और जो आदमी हज में लड़ाई-झगड़ा करता है, दूसरों के लिए तकलीफ़ का सबब बनता है और दूसरों से पहुँचनेवाली तकलीफ़ पर सब्र नहीं करता, वह अपने हज के अज्र (सवाब) को बहुत बड़ी हद तक बरबाद कर देता है।

इसके आगे अगर कोई आदमी ख़ूबियोंवाला हज करना चाहता हो तो उसको चाहिए कि अपने वक़्त का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा अल्लाह का ज़िक्र करने में ख़र्च करे। बैठा हुआ बेकार की गप्पें न हाँके। बेकार क़िस्सागोई न करे। किसी की बुराई करना तो बुरी चीज़ है, सिर्फ़ दुनिया के मामलों पर हर वक़्त बातें करते रहना भी हज के अज्र व सवाब को कम कर देता है। ऊँचे दरजे का ख़ूबियोंवाला हज अगर आप चाहते हों तो उसके लिए ज़रूरी है कि आप अपने वक़्त का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा अल्लाह का ज़िक्र करने में, नमाज़ें पढ़ने में, क़ुरआन मजीद की तिलावत करने में, नेकी और भलाई की बातें करने में, लोगों को अल्लाह का दीन समझाने में और उनको बुराइयों और बुरे कामों से रोकने में ख़र्च करें। अगर आप इन कामों में अपने औक़ात को लगाते हुए हज करेंगे तो अल्लाह ने चाहा तो वह हज ख़ूबियोंवाला हज होगा और इसपर आप बहुत बड़े अज्र के हक़दार हो सकेंगे।

अब मैं मुख़्तसर (संक्षिप्त) तौर पर आपको यह भी बताता हूँ कि हज के वे दूसरे फ़ायदे क्या हैं जो उसके बुनियादी मक़सद को पूरा करने के साथ-साथ आप से आप हासिल होते हैं। मैं यह बात पहले भी आपको बता चुका हूँ कि अल्लाह तआला ने ऐसी कोई इबादत फ़र्ज़ नहीं की है जो अपने अन्दर हमारे लिए बेशुमार फ़ायदे न रखती हो।

सामूहिक रूप से हज से जो बहुत बड़ा फ़ायदा होता है वह यह है कि मुसलमानों के अन्दर आलमगीर बिरादरी (विश्वव्यापी भाईचारा) और

आलमगीर मसावात (विश्वव्यापी बराबरी) पैदा होती है। इसी ख़ाना-काबा के दरवाज़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मक्का-फ़तह के मौक़े पर इसी जगह खड़े होकर यह एलान फ़रमाया था कि–

"ऐ क़ुरैश के लोगो! अल्लाह ने तुम्हारी जाहिलियत (अज्ञानता) की नहूसत दूर कर दी है। अब नसबों और ख़ानदानी रुतबों के लिए कोई मक़ाम बाक़ी नहीं रहा। अब यहाँ हसब व नसब के लिए कोई फ़ख़्र (गौरव की बात) नहीं है, किसी अरबी को ग़ैर-अरबी पर और किसी ग़ैर-अरबी को अरबी पर कोई फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) नहीं है, सिवाय परहेज़गारी के। तुम सब आदम (अलैहि॰) की औलाद हो और आदम (अलैहि॰) मिट्टी से बने थे।"

यह एलान अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इसी जगह से फ़रमाया था और इसी मक़ाम पर सबसे बढ़कर इस बात का मुज़ाहरा (प्रदर्शन) होता है कि तमाम इनसान बराबर हैं। किसी गोरे को काले पर और किसी काले को गोरे पर कोई फ़ज़ीलत नहीं है। न यहाँ कोई अमीर है; न ग़रीब, न कोई राजा है, न प्रजा, सब बराबर हैं। यहाँ आते ही बल्कि इस ख़ाना-काबा से मीलों दूर मीक़ात (सीमा) पर पहुँचते ही एक आदमी को अपने पहने हुए कपड़े उतारकर इहराम का लिबास पहन लेना पड़ता है। चाहे कोई अफ़रीक़ा से आ रहा हो या अमेरिका से, एशिया के किसी दूर-दराज़ कोने से आ रहा हो या यूरोप के किसी दूर गिरे-पड़े मक़ाम से। जहाँ से भी वह आ रहा हो हर आदमी को अपना क़ौमी लिबास उतारकर सिर्फ़ एक 'इहराम' पहन लेना होता है। इस तरह लिबासों के अलग-अलग होने से जो क़ौमी अलगाव पैदा होते हैं वे सब-के-सब ख़त्म हो जाते हैं। तमाम मुसलमान एक ही लिबास में हज करते हैं। इस तरह यहाँ एक ऐसी वहदत (एकता) जन्म लेती है जो किसी दूसरी तदबीर से पैदा नहीं की जा सकती। यह एकता न तो तक़रीरों (भाषणों) से पैदा हो सकती है और न जनसभाएँ करने से। यह सिर्फ़ इसी अमल से पैदा हो सकती है जो दुनिया के हर हिस्से से आए हुए लाखों मुसलमान एक ही वक़्त में अंजाम देते हैं कि मीक़ातों (सीमाओं) पर पहुँचे

ही वे एकदम अपने क़ौमी लिबासों को छोड़कर एक ही लिबास पहन लेते हैं।

फिर यह अमल सिर्फ़ आलमगीर (विश्वव्यापी) भाईचारा ही पैदा नहीं करता बल्कि आलमगीर मसावात (बराबरी) भी पैदा करता है। कोई बड़े-से-बड़ा रईस हो या कहीं का बादशाह, कोई फ़ील्ड मार्शल हो या राष्ट्रपति, कोई आक़ा हो या ग़ुलाम, हर एक को वही एक लिबास पहनना पड़ता है जो उसके लिए तय कर दिया गया है। हर कोई वही एक चादर बाँधेगा और वैसे ही दूसरी चादर ऊपर से ओढ़ेगा। यहाँ आकर किसी की कोई अलग शान बाक़ी नहीं रहती। अमीर और ग़रीब, राजा और प्रजा, सेवक और स्वामी सब बराबर हो जाते हैं। अल्लाह के दरबार में पहुँचकर किसी की कोई हैसियत अल्लाह का बन्दा होने के सिवा बाक़ी नहीं रहती। इस तरह से जो समानता यहाँ क़ायम होती है इसकी कोई मिसाल दुनिया में नहीं मिलती। दुनिया के किसी दीन (धर्म) में और किसी इजतिमाई मसलक (सामुदायिक पंथ) में कहीं कोई ऐसी तदबीर मौजूद नहीं है जो तमाम इनसानों को एक ही वक़्त में एक सतह पर लाकर खड़ा कर देती हो। यह भी हज की एक ऐसी बेमिसाल ख़ुसूसियत है जिसके बारे में अगर एक आदमी ग़ौर करे तो उसको महसूस होगा कि यह अल्लाह तआला की हिकमत के सिवा और किसी चीज़ का नतीजा नहीं हो सकती। कोई इनसान ऐसा नुस्ख़ा तजवीज़ नहीं सकता था, जिससे तमाम इनसानों को एक ही सतह पर लाना और उनके बीच ऐसी कामिल (पूर्ण) समानता क़ायम करना मुमकिन हो सके। इस बारे में इस्लामी इतिहास से भी एक मिसाल आपके सामने पेश करता हूँ।

यही मताफ़ (तवाफ़ का केन्द्र) है जहाँ आप हज करते हैं। इसी जगह ग़स्सान क़बीला का एक बादशाह (जबला-बिन-ऐहम) हज़रत उमर (रज़ि॰) की हुकूमत के ज़माने में आया और यहाँ तवाफ़ करते हुए एक बद्दू का पाँव उसकी चादर पर पड़ गया। उसने ग़ुस्से और घमण्ड में आकर उस बद्दू के एक थप्पड़ मारा। वह बद्दू हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास अपनी फ़रियाद लेकर गया। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने दोनों के बयानों को सुनने के बाद यह

फ़ैसला दिया कि अब वह बद्दू उस बादशाह को उसी तरह थप्पड़ लगाकर अपना बदला ले। मानो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उस बादशाह को सबक़ सिखाना चाहा कि यहाँ आकर भी तेरे दिमाग़ में बादशाही का फ़ख़्र और घमण्ड बाक़ी रह गया। तूने अल्लाह के दरबार में आकर भी अपने आपको बद्दू से बालातर (महान) समझा? यह है वह बराबरी जो हज क़ायम करता है। यहाँ अब भी आप देख सकते हैं कि बड़े-से-बड़ा रईस और ग़रीब-से-ग़रीब एक ही तरह से धक्के खाता हुआ 'हरम' में आता है और धक्के खाता हुआ अल्लाह के घर का तवाफ़ करता है, वहाँ जिस मक़ाम पर भी किसी आदमी को नमाज़ के लिए जगह मिल जाए वह वहीं पढ़ता है। कोई रईस, कोई बादशाह, और कोई राष्ट्रपति ऐसा नहीं है जिसके लिए ज़बरदस्ती आगे जाने का रास्ता बनाया जा सकता हो। अगर कोई ऐसा रास्ता बनाता है तो ग़लती करता है, जुर्म करता है।

फिर दुनिया में कहीं इस बात की मिसाल भी मौजूद नहीं है कि इस तरह का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (इज्तिमा) किसी क़ौम व मिल्लत (समुदाय) में पाया जाता हो। हज़ारों बरस के बाद अब इनसान ने इस ज़माने में लीग ऑफ़ नेशंज़ और यूनाइटेड़ नेशंज़ की कल्पना की है और इसकी बुनियाद पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ क़ायम की हैं। लेकिन चाहे पहले का लीग ऑफ़ नेशंज़ हो या मौजूदा ज़माने के यूनाइटेड़ नेशंज़, इनमें होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में और हज के अन्तर्राष्ट्रीय इज्तिमा में एक बहुत बड़ा बुनियादी फ़र्क़ है। यूनाइटेड नेशंज़ में जो अन्तर्राष्ट्रीय मजमा होता है वह क़ौमों के नेताओं, उनके राजनीतिक लीडरों और हुक्मरानों का मजमा होता है। ये वे लोग होते हैं जो एक-दूसरे के मुक़ाबले में अपने फ़ायदों और हितों की कशमकश करते हैं। इसका नाम अन्तर्राष्ट्रीय इज्तिमा नहीं हो सकता। सही अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय इज्तिमा तो यह है जो हर साल हज पर यहाँ होता है कि इसके अन्दर दुनिया की तमाम क़ौमों के आम आदमी खिंचकर आते हैं, एक-दूसरे के साथ मिलकर रहते हैं और सब इज्तिमाई तौर पर मुख़्तलिफ़ इबादतों को पूरा करते हैं। यहाँ क़ौमों के नुमाइन्दे, हुक्मरान, सियासतदाँ और पार्लियामेंट के मेम्बर नहीं आते, बल्कि आम इनसान आते हैं और

दुनिया की हर क़ौम के आम इनसानों से मिलते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय इज्तिमा का ऐसा अज़ीम नक़शा (महान दृश्य) और कहाँ देखा जा सकता है!

आख़िरी बात जो मैं आप से अर्ज़ करूँगा वह यह है कि इस्लामी दुनिया के अन्दर ख़ाना-काबा की मिसाल वही है जो इनसान के जिस्म में दिल की होती है। इनसान के जिस्म में दिल का मक़ाम यह है कि वह नस-नस से ख़ून खींचकर अपनी तरफ़ लाता और फिर उसको पम्प करके एक शुद्ध रूप में इनसान के जिस्म के रग-रग में वापस पहुँचाता है। मिल्लत रूपी जिस्म के लिए ऐसा ही अमल ख़ाना-काबा करता है। यह हर साल दुनिया के हर कोने से मुसलमानों को खींचकर लाता है और फिर उनको गुनाहों की गन्दगियों और सीरत और किरदार (जीवन और चरित्र) की कमियों से पाक करके उनके अन्दर एक नई और पाक ज़िन्दगी की बढ़ोत्तरी करके दुनिया के कोने-कोने में वापस पहुँचाता है। इस दिल की यह धड़कन जब तक हो रही है, दुनिया की कोई ताक़त इस्लाम को नहीं मिटा सकती। यह एक ऐसी तहरीक (आन्दोलन) है जो हर साल मुसलमानों को खींच-बुलाकर एक जगह जमा करती है, उनको एक वक़्त तक एक-दूसरे के साथ मिलाकर रखती है। उनसे मुख़्तलिफ़ इबादतों को अंजाम दिलाती है और इन इबादतों के दौरान में तमाम इस्लामी जज़्बात (भावनाओं) को ताज़ा करके एक मुतहर्रिक (गतिशील) और सक्रिय इस्लामी रूह उनके अन्दर फूँककर उन्हें वापस भेजती है। जिस तरह से इनसान के जिस्म में दिल जब तक धड़कता रहता है इनसान का जिस्म ज़िन्दा रहता है, उसी तरह से यह हज हक़ीक़त में इस्लामी दुनिया की धड़कन है जो ख़ून को खींचकर ला रही है और फिर उसको पाक-साफ़ बनाकर वापस पहुँचा रही है। यह अमल जब तक जारी रहेगा अल्लाह ने चाहा तो क़ियामत तक इस्लाम क़ायम रहेगा। दुनिया की कोई ताक़त, चाहे वह अपना कितना ही ज़ोर लगाकर देख ले, इसको दुनिया से नहीं मिटा सकती।

व आख़िरु दअवाना अनिल-हम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन।

❖ ❖ ❖